

BA 5th Semester Hindi Literature Notes

(Paper 1)

इकाई 1: भारतीय काव्य शास्त्र

काव्य प्रयोजन (Purpose of Poetry)

काव्य प्रयोजन का अर्थ है काव्य का उद्देश्य या जिसके लिए काव्य की रचना की जाती है। संस्कृत काव्यशास्त्र में कवियों और आचार्यों ने काव्य के प्रयोजन को विभिन्न रूपों में वर्णित किया है। भामह, भरतमुनि, दण्डी, और विश्वनाथ जैसे आचार्यों के मतों के अनुसार काव्य का प्रयोजन केवल मनोरंजन नहीं बल्कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरुषार्थ चतुष्टय) की प्राप्ति के लिए होता है। काव्य का एक उद्देश्य है यशप्राप्ति, ज्ञान और मनोरंजन देना, और सामाजिक व्यवहार की शिक्षा प्रदान करना। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि नाट्य (और काव्य) धर्म, यश, आयु का साधक होता है तथा बुद्धि और लोकोपदेश का स्रोत है। अर्थात् काव्य से न केवल कवि को लाभ होता है बल्कि समाज को भी उसका पुण्य फल प्राप्त होता है। काव्य न केवल रस और सौंदर्य प्रदान करता है, बल्कि मानव जीवन के विभिन्न आयामों में सुधार का माध्यम भी होता है।

काव्य लक्षण (Characteristics of Poetry)

काव्य लक्षण से तात्पर्य काव्य की विशेषताएँ या गुण हैं जो इसे अन्य साहित्यिक रूपों से अलग बनाते हैं। आचार्य भरतमुनि के अनुसार, काव्य ऐसा होता है जो मृदु, ललित पदों से बना हो, जिसमें शब्द और अर्थ गूढ़ न हों, और जिसे जनसाधारण आसानी से समझ सके। काव्य की विशेषताएँ हैं: भाव, बुद्धि, कल्पना, और शैली। साथ ही काव्य में रस का प्रमुख स्थान है। काव्य के गुणों में अदोषता (दोषरहित होना), रसवत्ता (रसपूर्ण होना), और रमणीयता (आनंददायक होना) प्रमुख हैं। काव्य का आनंद तभी होता है जब यह पाठक या श्रोता के हृदय को स्पर्श करे और उसमें रस की अनुभूति उत्पन्न करे।

काव्य हेतु (Cause or Reason for Poetry)

काव्य हेतु वह शक्ति या कारण है जिसके चलते कवि काव्य की सृष्टि करता है। यह काव्य की प्रेरणा, प्रतिभा, अभ्यास और व्युत्पत्ति (कौशल) का सम्मिलित परिणाम है। आचार्य वामन ने काव्य हेतु को 'काव्यांग' कहा है जिसमें प्रतिभा (नवोन्मेषशालिनी बुद्धि), व्युत्पत्ति (निपुणता), और अभ्यास (बारंबार प्रयास) शामिल हैं। कवि की नवीन सोच और विचारधारा, संस्कृत शास्त्रों का ज्ञान, और काव्य की गहन समझ ही काव्य हेतु होते हैं। काव्य हेतु का मतलब कवि के विनिर्माण की मूल वजह और उसकी आभा है जो साधारण भाषा को अलौकिक और सुंदर बनाती है।

काव्य का स्वरूप (Form of Poetry)

काव्य का स्वरूप उस मूलभूत रूप को दर्शाता है जिसमें काव्य प्रस्तुत होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है: ध्वनि (ध्वनि आधारित काव्य), गुणीभूत व्यंग्य (भाव प्रधान और व्यंग्यात्मक काव्य), और चित्र (अलंकार प्रधान काव्य)। काव्य के दो भेद महाकाव्य और खंडकाव्य भी प्रचलित हैं। महाकाव्य में एक विस्तृत कथा होती है जिसमें कई रसों का समावेश होता है, और खंडकाव्य छोटे पद्य रूप होते हैं। काव्य का स्वरूप केवल पद्य ही नहीं, बल्कि गद्य भी हो सकता है। नाट्य कला भी काव्य का एक रूप है जिसे दृश्य काव्य कहा जाता है। पद्य और गद्य दोनों में काव्य का रूप, शैली, रस और भाव आवश्यक होते हैं।

काव्य की आत्मा (Soul of Poetry)

भारतीय काव्य शास्त्र में काव्य की आत्मा का प्रश्न महत्वपूर्ण माना गया है। अधिकांश आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा कहा है। रस वह भाव है जो काव्य में छिपा होता है और जिसे काव्य के शब्दों और अलंकारों द्वारा व्यक्त किया जाता है। आचार्य वामन ने कहा कि काव्य की आत्मा 'रीति' है, यानि काव्य की सौंदर्यवृद्धि करने वाली शैली। आचार्य विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा माना है। कुछ ने ध्वनि, औचित्य, वक्रोक्ति आदि को भी काव्य की आत्मा बताया है, लेकिन सर्वाधिक स्वीकार्यता रस सिद्धांत को मिली है। रस ही वह तत्व है जो काव्य को जीवंत बनाता है, वह बिना रस के केवल शब्दों का संग्रह होता है। काव्य की आत्मा के रूप

में रस का महत्व अतुलनीय है क्योंकि रस ही पाठक या श्रोता के हृदय में गहरा प्रभाव उत्पन्न करता है।

इकाई 2: भारतीय काव्य सिद्धांत

1. अलंकार सिद्धांत

अलंकार सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र का सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इस सिद्धांत की स्थापना का श्रेय भामह को दिया जाता है, जिन्होंने काव्य के सौंदर्य तत्व के रूप में अलंकार को प्रमुखता प्रदान की। अलंकार का अर्थ है 'सज्जा' या 'सौंदर्य' जो शब्द और अर्थ दोनों की वक्रता (मुड़ाव या विचलन) से उत्पन्न होता है। यह काव्य के शाब्दिक और भावात्मक स्तर पर सुंदरता और आकर्षण की विशेषता प्रदान करता है।

अलंकारों को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है – शब्दालंकार (शब्दों का अलंकार जैसे अनुप्रास, यमक), अर्थालंकार (अर्थों का अलंकार जैसे उपमा, रूपक), और उभयालंकार (जिनमें शब्द और अर्थ दोनों शामिल हों)। भामह ने अलंकार को काव्य के भाव को अधिक प्रभावशाली और मनोरंजक बनाने वाला तत्व माना। दंडी, उद्भट और रुद्रट जैसे आचार्यों ने भी अलंकार सिद्धांत को समर्थित किया।

अलंकार सिद्धांत के अनुसार, काव्य में यदि अलंकार युक्त सौंदर्य है तो वह रसयुक्त होगा ही। काव्य में अलंकार त्रुटि रहित होने चाहिए और ये काव्य के भाव को प्रबल बनाते हैं। अलंकार सुंदरतापूर्ण भाषा संरचना के द्वारा पाठक के हृदय में भावों को प्रवाहित करते हैं।

2. रीति सिद्धांत

रीति सिद्धांत अलंकार सिद्धांत के बाद विकसित हुआ और इसे आचार्य वामन ने प्रवर्तित किया। रीति का अर्थ है 'शैली' या 'पद्धति' अर्थात् काव्य रचना की वह विशिष्ट कला और संरचना जिसमें पदों का चयन, संयोजन, और सौंदर्य निहित होता है। आचार्य वामन ने पहली बार 'रीति' शब्द को काव्य की आत्मा माना और कहा कि पदों की विशिष्ट रचना ही रीति है।

रीति सिद्धांत में काव्य की सुंदरता, अलंकार, ध्वनि, रस के साथ-साथ पद विन्यास और शब्द-संयोजन जैसे तत्वों को शामिल किया जाता है। रीति वह माध्यम है जिससे काव्य की

अभिव्यक्ति सुंदर, प्रभावी, और मनोहर बनती है। इसके अनुसार बिना सही रीति के काव्य अधूरा है।

रीति के प्रमुख प्रकार हैं: वैदर्भी रीति (शुद्ध और सरल शैली), कौमार भांग रीति (शिष्ट और प्रभावशाली शैली), और पद्धति रीति (विविधता और नाटकीयता से युक्त)। काव्य की गुणवत्ता इस रीति की सुंदरता और सामंजस्य पर निर्भर करती है।

3. रस सिद्धांत

रस सिद्धांत की स्थापना का श्रेय भरतमुनि को दिया जाता है, जो 'नाट्यशास्त्र' के लेखक थे। रस का शाब्दिक अर्थ है 'रस' या 'आनंद' जो काव्य के माध्यम से पाठक या श्रोता के हृदय में उत्पन्न होता है। रस वह अलौकिक सुख है जो काव्य की छटा से प्राप्त होता है।

भरतमुनि ने 8 प्रमुख रसों का उल्लेख किया है: शृंगार (प्रेम), हास्य (हास्य), करुण (दुःख), वीर (साहस), रौद्र (क्रोध), अद्भुत (आश्चर्य), भयानक (भय), और भीभत्स (जुगुप्सा)। बाद में नौवां रस 'शांति' भी जोड़ा गया।

रस की उत्पत्ति विभिन्न भावों के संयोजन से होती है – जैसे स्थायी भाव, उत्प्रेरक भाव, और संचारित भाव। प्रत्येक रस का एक राखी (स्थायी भाव) होता है, जैसे शृंगार रस का रति (प्रेमभाव)। रस सिद्धांत से काव्य को उसकी अभिव्यंजक शक्ति और भावात्मक गहराई मिलती है। रस के बिना काव्य रसहीन और नीरस होता है।

4. ध्वनि सिद्धांत

ध्वनि सिद्धांत आनंदवर्धन द्वारा प्रतिपादित एक महत्वपूर्ण काव्य सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार काव्य की आत्मा 'ध्वनि' है। ध्वनि का अर्थ भावप्रकाशक भाषा का वह स्वरूप है जो श्रोता या पाठक के हृदय में अनोखा भाव उत्पन्न करता है।

आनंदवर्धन ने ध्वनि को 'अर्थ-ध्वनि' माना, अर्थात् शब्दों की उसकी छटांगता और अर्थ की उस गहराई को जो भावों को संवेदनात्मक रूप से उभारती है। ध्वनि सिद्धांत रस और ध्वनि के समरसत्मक संबंध को स्वीकार करता है। अभिनवगुप्त ने भी इसे पुष्ट किया।

ध्वनि सिद्धांत के अनुसार, काव्य में शब्द ही नहीं, उनके उच्चारण, छंद, व्यंजना और प्रतीकात्मक अर्थ भी भावों का संचार करते हैं। यह सिद्धांत काव्य को संगीतात्मक और भावगत दोनों दृष्टिकोणों से समझाता है।

5. वक्रोक्ति सिद्धांत

वक्रोक्ति सिद्धांत का प्रवर्तक आचार्य कुंतक माने जाते हैं। 'वक्रोक्ति' का शाब्दिक अर्थ है 'टेढ़ी या मोड़ी हुई उक्ति'। इसका तात्पर्य है कि काव्य की अभिव्यक्ति न तो सामान्य और सरल हो, न सीधे-सादे शब्दों में बल्कि उसमें घुमा-फिरा कर सुंदरता, विलक्षणता और प्रतिभा प्रदर्शित हो।

आचार्य कुंतक के अनुसार, वक्रोक्ति भाषा की विविधताओं, शब्दों के खास प्रयोजनों और व्यंजना की उत्कृष्टता का कारण होती है। वे इसे काव्य की आत्मा तक मानते हैं। यह सिद्धांत बताता है कि कैसे साधारण भावों को असाधारण भाषा में प्रस्तुत करके काव्य को आकर्षक और अद्भुत बनाया जा सकता है।

वक्रोक्ति के विभिन्न स्तर होते हैं - चर (शब्द स्तर), पद (वाक्य स्तर), अर्थ (भाव स्तर), और काव्य (कुल मिलाकर सम्पूर्ण काव्य)। इस सिद्धांत ने काव्य के सौंदर्य तत्वों की व्याख्या में विशेष योगदान दिया है।

6. औचित्य सिद्धांत

औचित्य सिद्धांत नवीनतम भारतीय काव्य सिद्धांत है, जिसकी स्थापना आचार्य क्षेमेन्द्र ने की। इस सिद्धांत के अनुसार काव्य में 'औचित्य' यानी 'उचितता' काव्य का प्राण (जीवित तत्व) है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने कहा कि रस सिद्ध काव्य भी तभी स्थिर और प्रभावी होता है जब उसके सभी अंग और तत्व आपस में 'औचित्य' से युक्त हों।

औचित्य का अर्थ है वह सुंदरता और वैधता जो रचना के विभिन्न अंगों - जैसे पात्र, विषय, स्थान, समय, भाषा, और भाव में सामंजस्य रखती हो। बिना उचित सामंजस्य के काव्य अपूर्ण या अव्यवस्थित होता है।

औचित्य सिद्धांत ने काव्यशास्त्र में काव्य के तत्वों के बीच समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया। यह सिद्धांत साहित्य की आलोचना में एक महत्वपूर्ण आधार बनता है, जो कहता है कि काव्य के सभी तत्वों को अपनी अपनी जगह उपयुक्त होना चाहिए, तभी वह सफल होता है।

इकाई 3: साहित्यिकास्त्रीय अवधारणाएँ

काव्य रूप

काव्य रूप से तात्पर्य कविता या काव्य की वह विशेष शैली और संरचना है जो उसकी छंदबद्धता, तुकबंदी, लय, और प्रस्तुति के नियमों को निर्धारित करता है। काव्य रूप कविता के बाहरी स्वरूप तथा उसकी अभिव्यक्ति के तरीके को प्रतिबिंबित करता है। यह काव्य के उद्देश्य, भाव, और संप्रेषण क्षमता के अनुसार विभाजित होता है। भारतीय साहित्य में काव्य रूप के अनेक रूप प्रसिद्ध हैं जैसे महाकाव्य, खंडकाव्य, गीत, गज़ल, नाटक, और चम्पू। काव्य रूप की विविधता कविता के कला रूप को और समृद्ध बनाती है। महाकाव्य में विस्तृत कथा, मनोवृत्ति और विविध रसों का समावेश रहता है जबकि गीतिकाव्य में भाव प्रधानता होती है। नाटक को दृश्य काव्य माना गया है जिसमें अभिनय द्वारा कथा प्रस्तुत होती है। पद्य और गद्य दोनों प्रकार के काव्य रूप प्रचलित हैं।

काव्य गुण

काव्य गुण वे तत्त्व हैं जो काव्य में आंतरिक सौंदर्य तथा रस की अभिव्यक्ति को प्रबल करते हैं। काव्य गुण काव्य को मधुर, आकर्षक और प्रभावी बनाने वाले स्थायी भाव और तत्त्व होते हैं। उन्हें प्रमुख रूप से तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

1. माधुर्य - मधुरता और शृंगार रस में प्रयुक्त भावना, जो काव्य में सौंदर्य और किरकिरीपन की अनुपस्थिति दर्शाती है।
2. ओज - काव्य में प्रबलता, शक्ति और वीर रस की प्रधानता।
3. प्रसाद - स्पष्टता और सौम्यता, जो काव्य को पठनीय और सहज बनाती है।

इन गुणों के कारण काव्य का रस प्रभावी तक पहुंचता है और पाठक/श्रोता के हृदय में विविध भावों का संचार होता है।

शब्द शक्ति

शब्द शक्ति का अर्थ है शब्दों में निहित वह क्षमता जो उनके अर्थ और भावों का प्रभावी संप्रेषण करती है। शब्द शक्ति का संबंध शब्द के विभिन्न अर्थों से है – अभिधा (प्रत्यक्ष अर्थ), लक्षणा (सूचक अर्थ), और व्यंजना (प्रतीकात्मक/संकेतात्मक अर्थ)। प्रभावी काव्य में शब्द शक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि यही भावों का वाहक होती है और शब्दों के माध्यम से रस की अनुभूति संभव बनाती है। शब्दशक्ति के बल से साधारण शब्द भी गहरे भावों का प्रकाशन कर सकते हैं।

काव्य दोष

काव्य दोष वे दोष हैं जो काव्य के रस, माधुर्य और सौंदर्य में बाधा उत्पन्न करते हैं। ये दोष काव्य की श्रेष्ठता को कम कर देते हैं और रस के अनुभव में विघ्न डालते हैं। मुख्य काव्य दोषों में तीन प्रकार आते हैं:

1. शब्द दोष – गलत अथवा अनुपयुक्त शब्दप्रयोग, कठोर और अप्रिय शब्द।
2. अर्थ दोष – अर्थ की अस्पष्टता या व्याकरण संबंधी त्रुटियाँ।
3. रस दोष – रस की कमजोर स्थिति जिससे काव्य की भावात्मकता कम हो जाए।

विद्वानों के अनुसार दोषों का अभाव श्रेष्ठ काव्य की निशानी है। दोष रहित काव्य में रस सम्पूर्णता के साथ प्रकट होता है और पाठक को अप्रतिम सौंदर्य की अनुभूति कराता है।

इकाई 4: नाट्य शास्त्र

भारतीय नाट्य शास्त्र का परिचय

भारतीय नाट्य शास्त्र एक प्राचीन ग्रंथ है जो नाट्य कला के नियमों और सिद्धांतों का समग्र विवेचन करता है। इसे ऋषि भरतमुनि द्वारा रचित माना जाता है, जिसका निर्माण लगभग 200 ईसा पूर्व के आस-पास हुआ था। भरतमुनि ने नाट्य को भारतीय कला एवं संस्कृति का सर्वोच्च प्रदर्शन माना तथा इसे जीवन के चार पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – की प्राप्ति का माध्यम बताया।

नाट्यशास्त्र में कुल 36 अध्याय हैं जिनमें अभिनय, भाव, रस, छंद, अलंकार, नाट्य अंग, एवं रंगमंचीय व्यवस्था की विस्तृत जानकारी दी गई है। यह ग्रंथ भारतीय नाटक के दर्शन, सौंदर्यशास्त्र, संगीत, नृत्य आदि को समग्र रूप से प्रस्तुत करता है और विश्व नाट्य साहित्य का आधार है।

नाट्य वृत्ति

नाट्य वृत्ति का अर्थ है अभिनेता के उस मानसिक, वाचिक और कायिक व्यवहार से जो नाटक में भावों और पात्रों के व्यक्तिकरण का साधन होता है। आचार्य भरतमुनि और धनञ्जय ने नाट्य वृत्तियों को चार प्रमुख रूपों में वर्गीकृत किया है:

1. कौशिकी वृत्ति - यह वृत्ति कोमल, सुकुमार, और हास्य तथा श्रृंगार रस से संबंधित भावों को दर्शाती है। नायक या पात्र के व्यवहार में सौम्यता और नाटकीयता स्पष्ट होती है।
2. भारती वृत्ति - वाचिक और भाषण से सम्बंधित वृत्ति, जिसमें बुद्धिमत्ता, वाक्पटुता, एवं संवाद कला प्रमुख होती है।
3. अरभती वृत्ति - यह क्रोधित, वीर रस के भावों को प्रकट करने वाली वृत्ति है, जिसमें शक्ति, प्रबलता, और साहस दिखाया जाता है।
4. सात्त्वती वृत्ति - भावनाओं की गहराई, जैसे करुणा, भय, और भयानक रस को दर्शाती है, जिसमें पात्र की अन्तर्मुखता और स्थिरता प्रमुख होती है।

ये नाट्य वृत्तियां पात्रों के अभिनय में विविधता लाकर संपूर्ण नाटक की अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाती हैं।

अभिनय

अभिनय नाटक के किसी पात्र या कथा को व्यक्त करने की कला है जिसमें कलाकार अपनी वाणी, हाव-भाव, मुखमुद्रा, और शरीर की भाषा से भावों को प्रकट करता है। नाट्यशास्त्र के

अनुसार, अभिनय शब्द 'अभि' और 'णी' धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है 'नज़दीक जाकर प्रकट करना'।

अभिनय के चार प्रकार होते हैं:

1. आंगिक अभिनय - शरीर की मुद्राएं, हाव-भाव और शारीरिक क्रियाएँ।
2. वाचिक अभिनय - संवाद, उच्चारण, और वाणी से भावों की अभिव्यक्ति।
3. आहार्य अभिनय - वेशभूषा, आभूषण, और दृश्य सज्जा।
4. सात्त्विक अभिनय - मानसिक भाव, जैसे मानसिक पीड़ा, आनंद, क्रोध आदि।

अभिनय का उद्देश्य दर्शक के हृदय में भावों और रसों की अनुभूति करना है। यह नाटक को जीवंत और प्रभावपूर्ण बनाता है। भरतमुनि ने इसे नाटक की आत्मा माना है।

रूपक

रूपक अलंकार का एक विशेष प्रकार है जिसमें एक वस्तु को दूसरी वस्तु के रूप में दर्शाया जाता है। भारतीय नाट्यशास्त्र में रूपक शब्द नाटक के लिए भी प्रयुक्त होता है क्योंकि नाटक एक अभिनय रूपक होता है जहां पात्रों द्वारा विभिन्न भावों और कथाओं को प्रस्तुत किया जाता है।

रूपक के अनेक भेद हैं, जिनमें प्रमुख हैं:

- सांग रूपक - जहां रूपक स्पष्ट और विस्तृत होता है।
- निरंग रूपक - जहां रूपक सूक्ष्म और संकेतात्मक होता है।
- परम्परित रूपक - पारंपरिक रूपक जिसमें स्थापित नियमों का पालन होता है।

रूपक में उपमान और उपमेय के बीच साम्यता पर जोर दिया जाता है जिसका उद्देश्य दर्शकों को भाव और अर्थ की गहराई तक पहुँचाना होता है।

कथा

कथा शब्द का अर्थ है 'वह जो कही जाए'। यह नाटक या नाट्य प्रस्तुति का आधार होती है जिसमें एक कथा या कहानी नाटकीय रूप में प्रस्तुत होती है। कथा नाटक का विषय वस्तु होती है जिसमें पात्रों की घटनाएं, संघर्ष, और अन्तर्द्वंद्व होते हैं।

नाटकों में कथा कई रूपों में आती है, जैसे प्रेम कथा, वीरता कथा, धार्मिक कथा आदि। कथा का चुनाव नाटक की शैली, उद्देश्य और रस पर निर्भर करता है।

नेता या नायक

नायक उस पात्र को कहा जाता है जो कथा का मुख्य पुरुष पात्र होता है। नायक में निम्न गुण होते हैं:

- साहस और प्रभावशाली नेतृत्व क्षमता।
- आत्मविश्वास, दया, और नैतिकता।
- धार्मिक तथा सामाजिक सद्गुणों का समावेश।

भारतीय नाटक में नायक का मुख्य उद्देश्य कथा को आगे बढ़ाना और रसों की अनुभूति कराना होता है। नायक के विभिन्न प्रकार होते हैं, जैसे वीर नायक, प्रेम नायक, विनोदी नायक आदि।

नायिका

नायिका वह महिला पात्र होती है जो नाटक में अपनी भूमिका निभाती है। भारतीय नाट्यशास्त्र में नायिका के आठ भेद माने गए हैं, जैसे:

1. वासकज्जा (संपूर्ण रूप से सज्जित),
2. विरहोत्कंठिता (प्रेमी से दूर होकर व्याकुल),
3. स्वाधीनपतिका (स्वामीनिष्ठा वाली),

4. कलहांतरिता (संबंध-विरोधी),
5. खंडिता (धोखा खाई हुई),
6. विप्रलब्धा (प्रेमी अनमिलन की शिकार),
7. प्रोषितभर्तृका (प्रेरित प्रेमिका),
8. अभिसारिका (प्रीतम से मिलने वाली)।

नायिका का भाव, वृत्ति, और अभिनय नाटक में रस और सौंदर्य का प्रमुख स्रोत होता है।

रंगमंचीय विशेषताएँ

रंगमंचीय नाटक या दृश्य नाट्य वह होता है जिसका प्रदर्शन मंच पर किया जाता है। इसके लिए निम्नलिखित विशेषताएँ आवश्यक हैं:

- अभिनयोचित रंग-सज्जा: पात्रों और दृश्य के अनुरूप वेश-भूषा, प्रसाधन आदि।
- व्यापक अभिनय का स्थान: आंगिक, वाचिक, सात्त्विक, आहार्य अभिनय सभी समाहित।
- प्रत्यक्ष पात्रों की मौजूदगी: अनेक पात्रों का जीवंत मंच पर होना।
- दृश्य विधान की सीमाएं: रंगमंचीय प्रस्तुति में दृश्य सीमाओं का ध्यान रखा जाता है।
- प्रकाश, ध्वनि, और संगीत का उपयोग: दृश्य प्रभाव और दर्शकों के मनोबल के लिए।

रंगमंचीय नाटकों का उद्देश्य दर्शकों को न केवल आनंद देना है, बल्कि सामाजिक संदेश भी प्रदान करना होता है।

इकाई 5: पाश्चात्य काव्यशास्त्र (सामान्य परिचय)

अरस्तू का अनुकरण सिद्धांत

अरस्तू ने काव्य कला को प्रकृति की अनुकृति माना, जिसमें तीन प्रकार की वस्तुओं का अनुकरण शामिल होता है: वे वस्तुएँ जैसी वे थीं या हैं (यथार्थ), जैसी वे कही या समझी जाती हैं (कल्पित यथार्थ), और जैसी वे होनी चाहिए (सपष्ट या सम्भावित यथार्थ)। अरस्तू ने अनुकरण को मात्र नकल नहीं माना, बल्कि उसमें कवि की भावना, अनुभव और कल्पना का योगदान निश्चित माना। काव्य की मंशा न केवल सच का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करना है, बल्कि उसकी बेहतर और आदर्श रूपरेखा प्रदर्शित करना भी है। अरस्तू ने नाटक को इतिहास से उपर मानते हुए कहा कि कला मानव मनोभावों की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है, जबकि इतिहास केवल घटनाओं का यथार्थ विवरण। उन्होंने त्रासदी के महत्व को भी स्थापित किया, जिसमें दर्शक को भय और दया के माध्यम से शुद्धि (काथार्सिस) प्राप्त होती है।

अरस्तू के अनुसार काव्य की विधा में त्रासदी, हास्य, महाकाव्य आदि शामिल हैं जो मानव जीवन के विविध पहलुओं का अनुकरण करते हैं।

विरोधाभास सिद्धांत

विरोधाभास सिद्धांत में अस्तित्व और उसके निषेध के बीच विरोधाभास को प्रमुख माना जाता है। यह सिद्धांत दर्शाता है कि कोई वस्तु या स्थिति एक ही समय में दो विपरीत अवस्था में नहीं हो सकती। काव्य में विरोधाभास के तत्व गूढ़ सौंदर्य उत्पन्न करते हैं और पाठक में जिज्ञासा एवं आकर्षण बनाए रखते हैं। विरोधाभास सुंदरता और सौंदर्य के विरोधाभासों से उत्पन्न होता है जो काव्य को गहराई और विविधता प्रदान करता है। इस सिद्धांत से पता चलता है कि साहित्य में नए अर्थ और भाव उपजाने के लिए विरोधी तत्वों की आवश्यकता होती है जो संघर्ष, द्वंद्व और तनाव का निर्माण करते हैं।

कॉलरिज का कल्पना और फैंटेसी सिद्धांत

कॉलरिज ने कल्पना (Imagination) और फैंटेसी (Fancy) को अलग प्रकार की मानसिक शक्तियों के रूप में देखा। उनके अनुसार कल्पना उच्च स्तर की सृजनात्मक शक्ति है जो अनुभवों, विचारों और भावनाओं को जोड़कर नई गहराई और रूप बनाती है। यह अभिन्न और सृजनशील होती है। इसके विपरीत, फैंटेसी सिर्फ यांत्रिक पुनः संयोजन की प्रक्रिया है, जो पहले से विद्यमान अनुभवों या प्रतीकों को जोड़ती है पर कोई नई रचना नहीं करती। कॉलरिज ने कहा कि कल्पना वह शक्ति है जो एक कवि को कवि बनाती है, जबकि फैंटेसी

केवल सजावट और अलंकार की प्रक्रिया है। उनका यह सिद्धांत साहित्य में सृजनात्मकता और मूलता के महत्व को रेखांकित करता है।

वड्सवर्थ का काव्यभाषा सिद्धांत

वड्सवर्थ ने काव्य की भाषा को जनसाधारण की भाषा से जोड़ते हुए कहा कि कविता की भाषा सरल और सहज होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि कविता गद्य से भिन्न नहीं होती; दोनों की भाषा मूलतः समान होती है। वड्सवर्थ ने अभिजात्य, कृत्रिम और आडंबरपूर्ण भाषा के विरोध में ग्रामीण और बोलचाल की भाषा का पक्ष लिया। उनके अनुसार, ग्रामीण जीवन की भाषा में आत्मीयता, सरलता और सही भाव होते हैं, जिससे कविता अधिक प्रभावी बनती है। उन्होंने प्राचीन कवियों के भावों और भाषा की सरलता को भी उद्धृत किया। यह सिद्धांत काव्य की सार्वजनीनता और जनसाधारण के अनुभव को महत्व देता है।

रिचर्ड्स का संप्रेषण सिद्धांत

आई.ए. रिचर्ड्स ने काव्य में संप्रेषण (communication) को सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत माना। उनके अनुसार, कवि की अनुभूति और भावों का सफल संप्रेषण तभी संभव है जब पाठक उन अनुभूतियों को समझ सके और अनुभव कर सके। संप्रेषणीयता का गुण तभी होता है जब विषय रोचक और रमणीय हो। अर्थ, भाषा और प्रतीक की स्पष्टता संवाद सफलता की कुंजी है। रिचर्ड्स ने कहा कि कवि की रचना में अनुभव और प्रतिभा का सहज प्रस्तुतीकरण वह प्रभाव उत्पन्न करता है जो लेखक ने महसूस किया। संप्रेषण सिद्धांत में भाषा और काव्य का भावात्मक बोध बहुत महत्वपूर्ण है।

टी.एस. इलियट का निर्वैयक्तिकता सिद्धांत

टी.एस. इलियट ने साहित्य और काव्य में बढ़ती व्यक्तिवादिता (subjectivity) के विरुद्ध निर्वैयक्तिकता (impersonality) का सिद्धांत दिया। उनके अनुसार कवि का कार्य व्यक्तिगत भावना व्यक्त करना नहीं बल्कि एक सार्वभौमिक भाव की अभिव्यक्ति करना होता है, जिससे वह व्यक्तिगत सीमाओं से परे जाता है। इलियट ने कविता को वस्तुनिष्ठ तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा। उन्होंने कहा कि श्रेष्ठ काव्य वह है जो परंपरा पर आधारित हो और उसमें व्यक्तिगत भाव कम से कम हो, ताकि वह सार्वभौमिक हो सके। उनकी विचारधारा में कविता

सृजन की प्रक्रिया में व्यक्तिगत भावना की उपेक्षा होती है जिससे कला निर्मल और वस्तुनिष्ठ हो जाती है। इलियट के अनुसार, कवि की भूमिका वैज्ञानिक के समान होती है जो निष्पक्ष होकर सत्य प्रस्तुत करता है।

इकाई 6: हिंदी आलोचना का इतिहास तथा सैद्धांतिकी

हिंदी आलोचना का इतिहास

हिंदी आलोचना का आरम्भ आधुनिक काल के भारतेंदु युग से माना जाता है, जब हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक सोच की जड़ें पड़ीं। भाषाई और साहित्यिक विकास के साथ-साथ आलोचना की भी परंपरा विकसित हुई। आरंभ में ब्रज भाषा में काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों पर आधारित आलोचना प्रचलित थी, परन्तु व्यवस्थित आलोचना का उदय खड़ी बोली के साहित्यिक रूप के विकास के साथ हुआ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल को हिंदी आलोचना का प्रवर्तक माना जाता है, जिन्होंने साहित्य के सिद्धांतों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया और आलोचना को एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित किया। उनके बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आलोचना के दायरे का विस्तार किया, खासकर कहानी, उपन्यास एवं नाटक की आलोचना में। बाद के काल में मार्क्सवादी आलोचना, स्वच्छंदतावादी आलोचना, मनोविश्लेषणवादी आलोचना जैसी विभिन्न प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुईं। हिंदी आलोचना का इतिहास वैचारिक संघर्षों, सिद्धांतों के विकास और विवादों का समृद्ध इतिहास है।

सैद्धांतिक आलोचना

सैद्धांतिक आलोचना का उद्देश्य साहित्य के नियम, सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्रों का अध्ययन करना है। इसमें प्राचीन काल के रस, अलंकार, छन्द जैसे काव्य शास्त्रीय तत्वों के साथ-साथ आधुनिक साहित्य सिद्धांतों का भी विश्लेषण शामिल होता है। सैद्धांतिक

आलोचना में यह प्रश्न उठता है कि साहित्य के मानदंड निरंतर हैं या समय-समय पर बदलते रहते हैं।

हिंदी आलोचना में सैद्धांतिक आलोचना का ध्यान साहित्य के घटकों — जैसे रस सिद्धांत, अलंकार विग्रह, छन्दशास्त्र — के ऐतिहासिक व प्रयोगात्मक विकास पर रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'रस मीमांसा' के माध्यम से सैद्धांतिक आलोचना की नींव रखी। आधुनिक आलोचना में यह तर्कशील आलोचना और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के साथ भी जुड़ती गई।

स्वच्छंदतावादी आलोचना

स्वच्छंदतावाद, जिसे रोमांटिसिज्म भी कहा जाता है, 18वीं सदी के उत्तरार्ध से 19वीं सदी के मध्य तक यूरोप में जोर पकड़ने वाला साहित्यिक और बौद्धिक आन्दोलन था, जिसका प्रभाव हिंदी साहित्य और आलोचना पर भी पड़ा। यह आन्दोलन औद्योगिक क्रांति तथा ज्ञानोदय काल के यांत्रिक और नियमबद्ध दृष्टिकोण के विरुद्ध था।

स्वच्छंदतावादी आलोचना ने व्यक्ति की कल्पना, स्वतंत्रता, भावनात्मकता और प्राकृतिकता को साहित्य की सफलता का आधार माना। इस आलोचना में रचनाकार की स्वतंत्र अभिव्यक्ति और नए अनुभवों के संकलन पर बल दिया जाता है। स्वच्छंदतावादी आलोचना ने यथार्थवाद के विपरीत, कल्पना, भाव, और अनुभूति को महत्व दिया।

हिंदी में स्वच्छंदतावादी आलोचना छायावाद के उभार के साथ उभरी, जिसने अभिव्यक्तिवाद और व्यक्तिगत अभिव्यक्ति को प्राथमिकता दी। इस आलोचना के दिग्गजों में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, और महादेवी वर्मा जैसे कवि-आलोचक शामिल हैं, जिन्होंने भावप्रधान कविता और रचनात्मकता को बढ़ावा दिया।

मार्क्सवादी आलोचना

मार्क्सवादी आलोचना कार्ल मार्क्स के सिद्धांतों पर आधारित है, जो साहित्य को सामाजिक-आर्थिक संघर्षों और वर्ग संवेदनाओं की प्रतिविम्ब के रूप में देखती है। यह आलोचना साहित्य की सामाजिक भूमिका, वर्ग संघर्ष, उत्पादन के संबंध, और प्रभुत्व-निपात के पहलुओं की जांच करती है।

मार्क्सवादी आलोचक मानते हैं कि साहित्य किसी भी समाज के सामाजिक-आर्थिक यथार्थ का प्रतिबिंब होता है, और इसके माध्यम से शोषण, उत्पीड़न और वर्ग संघर्ष का प्रदर्शन होता है। हिंदी साहित्य में यह आलोचना 20वीं सदी के मध्य में उभरी, जिसमें साहित्य को समाज सुधार और क्रांतिकारी चेतना के उपकरण के रूप में देखा गया।

नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, और देवेंद्र मिश्र जैसे आलोचकों ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य की समीक्षा की। इस आलोचना ने सामाजिक न्याय, समानता, तथा असमानता के विषयों को प्रमुखता से उठाया और साहित्य को व्यापक सामाजिक संदर्भ में परखा।

मनोविश्लेषणवादी आलोचना

मनोविश्लेषणवादी आलोचना, जिसे मनोवैज्ञानिक आलोचना भी कहा जाता है, सिग्मंड फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धांतों से प्रभावित है। यह आलोचना लेखक और पाठक के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से साहित्य का विश्लेषण करती है।

मनोविश्लेषणवादी आलोचना में, रचना के पीछे लेखक के अवचेतन मनोभाव, हिट, कमसे, और द्वंद्व का अध्ययन किया जाता है। यह दृष्टिकोण पात्रों, कथानक, और विषयों की मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को उजागर करता है। हिंदी साहित्य में इस आलोचना ने मानव मन के गहरे तंत्रों को समझने, व्यक्तित्व संघर्षों और विकारों का विश्लेषण करने का मार्ग प्रशस्त किया।

यह आलोचना दर्शाती है कि कैसे लेखक के अनुभव, बाल्यकाल के प्रभाव, और मानसिक स्थितियाँ उसकी रचना में छिपी होती हैं। साथ ही, पाठक पर रचना के प्रभाव को भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझाती है, जिससे साहित्य का गहरा अनुभव संभव होता है।

इकाई 7: समीक्षा की विचारधाराएँ

नयी समीक्षा (New Criticism)

नयी समीक्षा या न्यू क्रिटिसिज्म मूलतः 20वीं सदी के प्रारंभ में अमेरिका और ब्रिटेन में उत्पन्न हुई एक आलोचनात्मक दिशा है। यह समीक्षा उस वक्त के सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक प्रेक्षण से अलग होकर केवल काव्य या साहित्यिक कृति के आंतरिक तत्वों, उसकी भाषा, संरचना, छंदबद्धता, रूप, और अंतःसंबंधों की जाँच में विश्वास करती है। नयी समीक्षकों का मानना है कि साहित्य की सफलता या विफलता केवल कृति की भाषाई और संरचनात्मक एकजुटता और उसके भीतर के भावों तथा प्रतीकों के अंतर्संबंधों से ही निर्धारित होती है।

नयी समीक्षा इतिहास, लेखक के जीवन, सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ को समीक्षा में शामिल करने का विरोध करती है। यह साहित्य को एक स्वायत्त इकाई मानती है जिसके तत्वों का अध्ययन स्वतंत्र रूप से किया जाना चाहिए। इसका प्रमुख सिद्धांत है 'रूप और अंतर्वस्तु का अभिन्न सम्बन्ध' तथा 'काव्य को अपनी अभिव्यक्ति के रूप में देखना'। ट.एस. इलियट और आइ.ए. रिचर्ड्स इस आंदोलन के मुखर समर्थक थे। आलोचना का यह रूप साहित्य के सौंदर्यशास्त्र को वैज्ञानिक रूप देने का प्रयास है।

नवशास्त्रीयता (Neo-Classicism)

नवशास्त्रीयता 18वीं सदी के अन्तिम और 19वीं सदी के प्रारंभ में यूरोप में जन्मी साहित्यिक और कलात्मक विचारधारा है। यह क्लासिकल युग (यूनानी-रोमन साहित्य) के अनुकरण और पुनरुत्थान की ओर प्रवृत्त थी। नवशास्त्रीय आलोचना में काव्य को नियमबद्ध, मुकम्मल, और मर्यादित कला माना गया। विचार, भावना और भाषा में संयम एवं तार्किकता को इस सिद्धांत की आधारशिला माना जाता है।

नवशास्त्रीयता में कला का उद्देश्य न केवल मनोरंजन बल्कि शिक्षण और नैतिकता का प्रचार भी माना जाता है। कलाकृति की पूर्णता उसके नियमों और परंपराओं के पालन में देखी जाती है। इसमें चित्रण की सटीकता, पात्रों की समरूपता एवं सामाजिक मूल्यों का

संरक्षण आवश्यक है। हिंदी में यह दृष्टिकोण पुनर्जागरण कालीन साहित्य में अभिव्यक्त हुआ, जैसे पद्मावती और हरिवंश राय बच्चन आदि के कार्य में।

यथार्थवाद (Realism)

यथार्थवाद एक दार्शनिक और साहित्यिक प्रवृत्ति है जो वस्तुओं, जीवन और समाज को उसी वास्तविक रूप में प्रस्तुत करती है जैसा वे होते हैं, बिना किसी कल्पना या अलंकरण के। यह परिकल्पना करता है कि विश्व का अस्तित्व अभिज्ञान से स्वतंत्र है और सभी वस्तुएं वस्तुनिष्ठ होती हैं।

साहित्य में यथार्थवाद सामाजिक जीवन के कलुषित पक्षों, आम मानव जीवन के संघर्षों, और यथार्थ घटनाओं को निष्पक्ष रूप से चित्रित करने में विश्वास करता है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद, मिर्जा साहिब और धर्मवीर भारती यथार्थवाद के प्रमुख साहित्यकार हैं जिन्होंने समाज की विडंबनाओं, वर्ग संघर्ष, और सामाजिक सुधार के लिए यथार्थवादी विषयों को अपनाया।

आभिजात्यवाद (Classicism)

आभिजात्यवाद साहित्य की उस धारणा को कहते हैं जो श्रेष्ठ और शुद्ध साहित्य को उच्च बुद्धि, सौंदर्य, तथा सामाजिक मर्यादाओं के स्तर पर मानती है। यह सिद्धांत मानता है कि साहित्य का उद्देश्य न केवल मनोरंजन बल्कि मानवीय और सार्वभौमिक मूल्यों की अभिव्यक्ति भी है।

आभिजात्यवाद का विकास यूनानी और रोमन साहित्य के आदर्शों के अनुकरण से हुआ। यह नियम, शैली, और मर्यादा का कठोर पालन करता है। हिंदी आलोचना में रामचंद्र शुक्ल ने इसे महत्वपूर्ण स्थान दिया और इस सिद्धांत को साहित्यिक मानकों को स्थापित करने का आधार माना। आभिजात्यवाद ने शास्त्रीय काव्यशास्त्र के नियमों को आधुनिक संदर्भ में पुनर्जीवित किया।

नव्य आभिजात्यवाद (Neo-Classicism)

नव्य आभिजात्यवाद नवशास्त्रीयता से प्रेरित आधुनिक आलोचनात्मक दिशा है, जो कलात्मक परिष्कार, शील और पारंपरिक नियमों की पुनः स्थापना पर बल देती है। यह

पारंपरिक अभिजात्यवाद का नवीनीकृत संस्करण है जो नए काल की आवश्यकताओं के अनुरूप संशोधित हुआ।

नव्य आभिजात्यवाद में शास्त्रीय मर्यादाओं के साथ साहित्य की सामाजिक उपयोगिता और नवीन रचनात्मकता के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया। यह आलोचना यथार्थ और कल्पना के बीच सामंजस्य को भी स्वीकार करती है। हिन्दी साहित्य में यह दृष्टि 20वीं सदी मध्य में प्रबल हुई।

कलावाद (Art for Art's Sake)

कलावाद वह विचारधारा है जिसमें कला को मात्र कला के लिए स्वतंत्र और स्वायत्त माना जाता है, जहां कला का कोई सामाजिक, नैतिक या राजनीतिक उद्देश्य आवश्यक नहीं होता। इसका मूल मंत्र है "कला कला के लिए"।

कलावाद ने साहित्य और कला में स्वतंत्रता, मौलिकता, और सौंदर्य की प्राथमिकता दी। इस आंदोलन ने पाठक और समाज से कला को विरक्त किया और उसका ध्यान केवल कलात्मकता पर केन्द्रित किया। यह दर्शन 19वीं सदी के यूरोप में जोर पकड़ने वाला था। हिंदी आलोचना में भी इसका प्रभाव पड़ा, जहां साहित्य को नियमों और मानदंडों से मुक्त करके सुंदरता का आनंद लेने की सीख दी गई।

बिम्बवाद (Imagism)

बिम्बवाद 20वीं सदी की ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका की काव्यधारा है जिसमें काव्यात्मक छवि (इमेज) की स्पष्टता, संक्षिप्तता, और तीव्रता को अत्यंत महत्व दिया जाता है। बिम्बवाद का उद्देश्य शब्दों के माध्यम से मानसिक और संवेदनात्मक चित्रण करना है, जहां संक्षिप्त और सटीक भाषा में भावों का सृजन होता है।

बिम्बवादी काव्य में कल्पना की सूक्ष्म अभिव्यक्ति और दृश्य प्रभाव प्रमुख होते हैं। इस आंदोलन ने फॉर्म और भाषा में परिष्कार का संकल्प किया। हिंदी साहित्य में रामचंद्र शुक्ल ने बिम्ब अवधारणा को नई दिशा दी तथा इसे रस सिद्धांत के सान्निध्य में रखा।

प्रतीकवाद (Symbolism)

प्रतीकवाद 19वीं सदी के अंत में फ्रांस में विकसित हुआ साहित्यिक आंदोलन है जिसमें प्रतीकों का प्रयोग कविता और साहित्य में अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है। प्रतीकवाद के अनुसार, वास्तविकता की गहराई को सीधे शब्दों में अभिव्यक्त करना संभव नहीं, इसलिए प्रतीकों के माध्यम से गूढ़ अर्थ व्यक्त किया जाता है।

प्रतीकवादी काव्य रहस्यमय, गूढ़ और ओझल होता है, जो पाठक से अधिक गहन ध्यान की अपेक्षा करता है। इस आंदोलन ने आधुनिक कविता को नया आयाम दिया। हिंदी में भी अज्ञेय और कुछ अन्य कवियों ने प्रतीकवाद के तत्वों को अपनाया।

संरचनावाद (Structuralism)

संरचनावाद एक आधुनिक वैचारिक आंदोलन है जो भाषा, साहित्य और संस्कृति में संरचनाओं के महत्व को समझता है। यह सिद्धांत कहता है कि किसी भी पाठ, सामाजिक क्रिया या भाषा के अर्थों को उसके आंतरिक संरचनात्मक तत्वों के आधार पर समझा जाना चाहिए, न कि केवल सतही अर्थों से।

संरचनावाद में व्याकरण, प्रतीक, और सामाजिक मान्यताएँ शामिल हैं, जो अर्थ के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। साहित्यिक आलोचना में संरचनावाद पाठ्यक्रमों और कथानकों के छुपे हुए ढांचे की खोज करता है।

उत्तर संरचनावाद (Post-Structuralism)

उत्तर संरचनावाद संरचनावाद की आलोचना करते हुए कहता है कि पाठ या अर्थ कभी भी निश्चित ढांचे में बंद नहीं किया जा सकता। यह विचारधारा अस्तित्ववाद, भाषा दर्शन, और विभिन्न आलोचनात्मक दृष्टिकोणों का मिश्रण है। उत्तर संरचनावाद अर्थों की बहुलता, विचित्रता, और अस्थिरता को स्वीकार करता है।

इसमें माना जाता है कि किसी भी पाठ का अर्थ स्थिर नहीं, अपितु बहु-आयामी और पाठक की व्याख्या पर निर्भर होता है। उत्तर संरचनावाद ने साहित्य और संस्कृति की आलोचना में नए और विविध दृष्टिकोणों की गहराई दी है।

उत्तर आधुनिकता (Postmodernism)

उत्तर आधुनिकता 20वीं सदी के दूसरे भाग में विकसित हुई सांस्कृतिक और दार्शनिक प्रवृत्ति है जिसमें परंपरागत आधुनिकीकरण के सिद्धांतों की आलोचना की जाती है। उत्तर आधुनिकता प्रश्न उठाती है सार्वभौमिक सत्य, वस्तुनिष्ठता, प्रगति की अवधारणा पर और सांस्कृतिक निरंतरता को चुनौती देती है।

यह आंदोलन बहुलता, विरोधाभास, विखंडन, और विच्छेद पर जोर देता है। साहित्य में उत्तर आधुनिकतावाद ने कल्पना की परंपरागत सीमाओं को तोड़ा, आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उजागर किया, और अर्थ की अस्थिरता को स्वीकार किया।

विखंडन (Deconstruction)

विखंडन उत्तर आधुनिकता का ही अंग है, जिसे जैक्स डेरिदा ने स्थापित किया। यह एक आलोचनात्मक प्रक्रिया है जो पाठों के भीतर अंतर्निहित विरोधाभासों और सांस्कृतिक पूर्वधारणाओं को उजागर करती है। विखंडन कहता है कि किसी भी पाठ या सिद्धांत का एक स्थिर अर्थ नहीं होता, बल्कि उसके अर्थ में सदैव विसंगतियाँ और बहुविकल्पीता निहित होती है।

विखंडन साहित्य, दर्शन, भाषा और समाजशास्त्र में व्यापक रूप से प्रयोग होता है। यह सिद्धांत पाठ के पढ़ाई के स्वरूप को चुनौती देता है और अर्थ को अस्थिर, बहुविध और संदिग्ध मानता है।

इकाई 8: आलोचक एवं आलोचना दृष्टि

रामचंद्र शुक्ल: काव्य में लोकमंगल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'काव्य में लोकमंगल' की अवधारणा से हिंदी साहित्य में ग्रामीण जीवन, जन-जीवन और सामाजिक कल्याण के मूल्य को केंद्र में रखा। उन्होंने लोकमंगल को दो अवस्थाओं में विभाजित किया – साधनावस्था (जीवन के प्रयत्न पक्ष) और सिद्धावस्था (जीवन के उपयोग पक्ष)। शुक्ल के अनुसार, लोकमंगल का स्वरूप समाज कल्याण से जुड़ा है, जिसमें अहिंसा, दया, शांति और क्षमा के आदर्श सम्मिलित होते हैं। उनका मानना था कि

श्रेष्ठ काव्य वही है जो लोक के कल्याण की इच्छा के साथ जनमानस के भावों से गहराई से जुड़ा हो। तुलसीदास की भक्ति और उनकी सामाजिक चेतना रामचंद्र शुक्ल की आलोचना में विशिष्ट स्थान रखती है।

प्रेमचंद: साहित्य का उद्देश्य

प्रेमचंद ने साहित्य को समाज सुधार एवं मानवीय चेतना जागृत करने का माध्यम माना। उनका काव्य और गद्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक बीमारियों, वर्ग असमानता, और मानव जीवन की विषम परिस्थितियों पर प्रकाश डालने वाले पात्र और कथानक होते हैं। प्रेमचंद के अनुसार साहित्यकार का उद्देश्य समाज में ऐसे वातावरण का निर्माण करना है जिसमें सकारात्मक परिवर्तन संभव हो। उनकी दृष्टि में साहित्य आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति का स्रोत है, जो कठिनाइयों के प्रति दृढ़ता उत्पन्न करता है।

प्रसाद: छायावाद और यथार्थवाद

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद और यथार्थवाद के बीच समन्वय स्थापित कर छायावाद को यथार्थवादी आधार प्रदान किया। उनके विचार में छायावाद युग के अंतर्विरोधों का रहस्यानुभूति एवं दर्शन है जो मनुष्य के जीवन के दार्शनिक पक्ष को कविता में समाहित करता है। प्रसाद ने 'साधारण में छिपे असाधारण' की भावना को कविता का मूल बताया और कहा कि कवि का यथार्थ अनुभव उसकी रचना की आत्मा है। उन्होंने छायावादी आत्मावलोकन में भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक संकटों का प्रतिबिंब भी देखा।

हजारी प्रसाद द्विवेदी: आधुनिक साहित्य - नई मान्यताएँ

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'आधुनिक साहित्य: नई मान्यताएँ' ग्रंथ में आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों और उनके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों का विश्लेषण किया। वह मानते थे कि आधुनिक साहित्य पारंपरिक मान्यताओं से अलग होकर मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक न्याय, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है। द्विवेदी के अनुसार आधुनिक साहित्य स्वयं समाज का दर्पण है, जो विकास, बदलाव और संघर्ष की झलक प्रस्तुत करता है। उन्होंने साहित्य को सामाजिक चेतना, ऐतिहासिक प्रक्रिया, और वैचारिक भागीदारी का माध्यम माना।

डॉ. नगेन्द्र: मेरी साहित्यिक मान्यताएँ

डॉ. नगेन्द्र ने अपने निबंध संग्रह 'आलोचक की आस्था' में साहित्य के स्वरूप, प्रयोजन, और मूल्य संबंधी सिद्धांत स्थापित किए। उन्होंने साहित्य को अनुभव, अभिव्यक्ति, और युगानुसार सत्यता का संयोजन माना। डॉ. नगेन्द्र ने काव्य के तीन तत्व – भाव, कल्पना, और रूप – में भाव को सर्वोपरि माना। वे आई.ए. रिचर्ड्स की आलोचना धाराओं से प्रभावित थे और साहित्य में मूल्यात्मक और कलावादी दृष्टिकोण को समान रूप से अपनाया। उनके विचार में साहित्य की वास्तविकता युग-बद्ध और युग-मुक्त दोनों हो सकती है, जो समय के साथ बदलती रहती है।

रामविलास शर्मा: तुलसी साहित्य में सामंती विरोधी मूल्य

रामविलास शर्मा ने तुलसीदास के साहित्य को सामंती व्यवस्था के विरोध में एक जनवादी चेतना माना। उन्होंने कहा कि तुलसी की भक्ति सत्ता की उपासना नहीं, बल्कि जनता के कल्याण का माध्यम थी। तुलसी के साहित्य में विषमता, शोषण, और सामंती आधिपत्य के विरुद्ध प्रभावशाली समाज-निंदा है। शर्मा के अनुसार तुलसी ने जनमानस के न्याय और समानता के अधिकारों की रक्षा की, जो एक क्रांतिकारी दृष्टि है। उनकी यह धारणा मार्क्सवादी आलोचना से जुड़ी हुई है, जो साहित्य में सामाजिक संघर्ष का अध्ययन करती है।

नामवर सिंह: कहानी – नई और पुरानी

नामवर सिंह ने हिंदी कहानी के विकास को पुरानी और नई कहानियों के द्वैत में विश्लेषित किया। उन्होंने पुरानी कहानी को पारंपरिक, यथार्थवादी, और सामाजिक संरचनाओं का प्रतिबिंब माना जबकि नई कहानी को अधिक व्यक्तिवादी, मनोवैज्ञानिक और आधुनिकता के संदर्भ में देखा। नामवर सिंह ने नई कहानियों के माध्यम से समाज के जटिल और विरोधाभासी पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि नई कहानी आधुनिक भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक समस्याओं की विवेचना करती है, जो भाषा, शैली, और विषय में नवाचार लाती है।

मुक्तिबोध: नई कविता का आत्मसंघर्ष

गजानन माधव मुक्तिबोध ने नई कविता का 'आत्मसंघर्ष' एक त्रिविध संघर्ष के रूप में माना – तत्व की खोज के लिए संघर्ष, अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए संघर्ष, और दृष्टि के विकास के लिए संघर्ष। उनके विचार में नई कविता केवल भावात्मक नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिसमें कवि के संस्कृतिकर्मी के रूप में जागरूक होना आवश्यक है। मुक्तिबोध ने कविता को युग की पीड़ा और आशा का संवेदनशील उद्घाटन माना। उन्होंने कहा कि नयी कविता में पारंपरिक चिंतन से परे जाकर नए आकलन, नए दृष्टिकोण, और सूक्ष्म अनुभवों का समावेश आवश्यक है, जो युग के द्वंद्वों का सार्थक प्रतिबिंब हो।

